* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ८ | गौराब्द ४७६, मास—गोविन्द ५, वार—अनिरुद्ध
बुधवार, ३० माघ, सम्वत् २०१९, १३ फरवरी १९६३ | संख्या ९

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठक्कुरभक्तिविनोद-कृत]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

राहुग्रस्ते जड़शशधरे फाल्गुने पूर्णिमायां गौडे शाके मनुशतमिते सप्तवर्षाधिके यः ।
मायापुर्यां समजनि शचि-गर्भसिन्धौ प्रदोषे तं चिच्छक्ति-प्रकटित-तनुं मिश्रसूनुं स्मरामि ॥१॥
विश्वंभर प्रभु हरि द्विज गौरचन्द्र निम्बेश नामनिचयः क्रमतो बभूव ।
यस्यार्यखण्ड-मुकुटोपम गौडराष्ट्रे गौरं स्मरामि सततं कलिपावनं तम् ॥२॥
अङ्गिकुर्वन् निजसुखकरीं राधिकाभावकान्ति मिश्रावासे सुललितवपु गौरवर्णो हरिर्यः ।
पल्लीस्त्रीणां सुखमभिदधत् खेलयामास बाल्ये बन्देऽहं तं कनकवपुषे प्राङ्गणे रिङ्गमाणम् ॥३॥
सर्पाकृतिं स्वाङ्गनगं ह्यनन्तम् कृत्वासनं यस्तरसोपविष्टः ।
तत्याज तच्चात्मजनानुरोधात् विश्वंभरं प्रणमामि नित्यम् ॥४॥
बाल्ये शृण्वन् वद हरिमिति क्रन्दनादयन्निवृत्त स्तस्मात् स्त्रीणां सकलसमये नामगानं तदासीत् ।
मात्रे ज्ञानं विशदमवदन्मृत्तिका भक्षणे यः बन्दे गौरं कलिमलहरं नाम-गानाश्रयं तम् ॥५॥

(क्रमशः)

अनुवाद—

श्रीश्रीगौरांगस्मरणमंगल-स्तोत्र

(श्रीराधारमणघेरा, वृन्दवानके परलोकगत पंडित श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी कृत पद्यानुवाद)

[दोहा]

मंगलाचरण

जय जय श्रीराधारमण, चरण कमल रज लेश ।
श्रीब्रह्मा सनकादि शिव, सब धारत नित केश ॥

जय जय श्रीचैतन्य प्रभु, कलिपावन अवतार ।
स्व-भजन मुद्रा जगत में, आप करी विस्तार ॥

जय जय नित्यानन्द प्रभु, जय अद्वैताचार्य ।
जयतु गदाधर जयतु, श्रीवास भक्तपथ आर्य ॥

रूप सनातन भट्टयुग जीव दासरघुनाथ ।
बन्दत गोस्वामी छहों कीजै मोहि सनाथ ॥

श्रीगुरु गोपीलालके, पद जुग नाउँ सीस ।
वैष्णव जन मोहि दीजिये, श्रीहरिभक्ति असीम॥

मुक्ता माता जनक निज, बन्दौ तत्त्वाराम ।
जिन करुणा बल मिलौ यह, मानव तन अभिराम॥

करहु शक्ति संचार प्रभु, गाउँ तव गुण रास ।
विद्या कविता न मम कछु, केवल तुम पद आस ॥

गौरचरित विस्तृत बहुत, आयु अल्प जन जानि ।
श्रीयुत भक्ति विनोदजू, कीय संक्षेप बखान ॥

तिन आयसु बल पायकें, सो संक्षेप विलास ।
ब्रजभाषामें रचत हौं, छन्द बन्ध परकास ॥

अनुवाद प्रारम्भ

(१) शाके मनुशत भानुमित, पूनम फागुन मास।
उदितहि सन्ध्या समय किय, आय राहु शशि ग्रास ॥
नवद्वीप मायापुरी, जगन्नाथके गेह।
शची गर्भ प्रकटे हरि, धरी कनकमय देह ॥

(२) कलिपावन श्रीगौर हरि, विश्वम्भर गुणधाम।
महाप्रभु निम्बेश अरु, भये निमाई नाम ॥

(३) निज जलधर दुति आवरी, राधाकञ्चन रङ्ग।
प्रिय भाव रसलैं प्रकट, कियौ गौर निज अङ्ग ॥
गौर बाल्य निरखत सबै, नादिया नागरि आय।
छोड़ि छोड़ि गृह काज निज, आनन्द उर न समाय ॥

(४) आङ्गनमें घुटुअन रिङ्गत, फिरत गिरत मुसुकात।
दमक दन्तुलिया चारकी मानहु मुकुता पाँत ॥
निरख्यौ आँगनमें फिरत, भुजग भयङ्कर एक।
सो अनन्त निज शयन लखि, लियौ खेंचकर टेक ॥
आप विराजे तासु पर, अधिक मुदित मन माँहि।
बालक चापल देख यह, निज जन अकुलाँहि ॥
देख विकलता मातु पितु, तजिदीनी हरि राय।
विषधर मन आनन्द मगन, चलौ सबन सिर नाय ॥

(५) मचल जात रोवत जबै, सम्हलत कोउ विधिनाय।
सुनत जबै "हरिबोल" धुनि, हँसत तुरत सुख पाय ॥
नदिया नागरि युथ सब, गौर हँसावन काम।
मिल गावत आठो पहर, मधुरे सुर हरि नाम ॥
कहु सुवन माटी भखी, लखि धमकायौ मात।
"अन्न मिष्ट माटी सबै", कही ज्ञानकी बात ॥

(क्रमशः)

ऐकान्तिक हरिभजन

तन, मन और वाणीका दमन कर उन सबको श्रीकृष्ण-सेवामें नियुक्त करनेवाला पुरुष ही त्रिदण्डी कहलाता है। त्रिदण्डी हुए बिना गोस्वामी नहीं हुआ जा सकता। गो=इन्द्रिय-समूह, स्वामी=पति अर्थात् जो इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया है वही गोस्वामी है। इसीलिए महाभारतके हंस गीतामें तथा श्रीरूप गोस्वामीके उपदेशामृतमें त्रिदण्ड-विधिका उपदेश है। केवल मात्र बाहरी चिह्न—त्रिदण्ड धारण कर लेनेसे ही इन्द्रियोंका दमन नहीं हो जाता अथवा जितेन्द्रिय नहीं हुआ जाता, बल्कि कृष्णभजनके अनुकूल जीवन-यापन करनेसे ही त्रिदण्ड ग्रहणकी सार्थकता सम्पन्न होती है। अन्यथा दंभके लिए त्रिदण्ड-ग्रहण करनेका अभिनय करनेसे जीवके अन्तर्निहित हरिभजनकी प्रवृत्ति भी नष्ट हो जाती है।

भिक्षा तीन प्रकारकी होती है—(१) थोड़ा-थोड़ा भिक्षान्न संग्रह द्वारा जो भिक्षा होती है उसे माधुकरी भिक्षा कहते हैं। (२) कौन दाता देगा और कौन दाता नहीं देगा—ऐसा जान कर जो भिक्षा की जाती है, असंक्लिप्त भिक्षा कहते हैं। (३) पूर्व निर्दिष्ट दाता अवश्य ही भिक्षा देगा—ऐसा जानकर जो भिक्षाकी जाती है, उसे प्राक्प्रणीत भिक्षा कहते हैं। इनमेंसे माधुकरी भिक्षा ही सर्वोत्तम वृत्ति है। अनिर्दिष्ट सात विप्रोंके घरोंसे भिक्षा द्वारा जो कुछ मिले उसीसे जीविका निर्वाह करना उचित है। शुक्लवित्त संग्रहकारी अर्थात् शास्त्रोक्त न्याय पूर्ण वृत्तिद्वारा ही धन आदिका संग्रह करनेवाले तथा अमेध्य (मांस-मदिरादि) का भोजन न करनेवाले वर्णाश्रम धर्मके प्रति श्रद्धा सम्पन्न गृहस्थके घर पर ही भिक्षा लेनी चाहिए। जो लोग वर्णाश्रम धर्मके प्राण स्वरूप भगवद्भजनसे विमुख हैं, उनके घर पर कभी भी भिक्षा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि ऐसे लोग अपने भोगके लिए ही वर्णाश्रम धर्मके विरोधी और यथेच्छाचारी हुए हैं। ऐसे लोगोंके निकट भिक्षा माँगनेसे वे विरक्त होकर Vagrancy Act के अन्तर्गत अपराध का आरोप करेंगे।

भगवद्भक्त एकायन पद्धतिको ग्रहण कर पृथ्वी में अकेला ही स्वेच्छापूर्वक विचरण करेगा। यहाँ तक कि सारी वासनाओंका भी सर्वथा त्याग करेगा। क्योंकि वासनाओंके रहनेसे हरिभजन नहीं होता। इसके अतिरिक्त इन्द्रियोंकासंयम भी संभव नहीं होता। इसलिए सब समय समस्त इन्द्रियों द्वारा कृष्णानुशीलन करना ही उचित है। कृष्णकी लीला-कथाओंके श्रवण-कीर्तनमें नियुक्त रहनेसे तथा कृष्णार्थे अखिल-चेष्टा विशिष्ट होनेसे वासनामय कुसंङ्गकी संभावना नहीं होती तथा इन्द्रियोंका दमन भी अपने-आप ही हो जाता है।

भगवद् भक्तोंका संग ही निःसंग कहलाता है। यह सत्संग ही असत्संगसे बचनेका प्रधान उपाय है। असत्संग ही भगवद्भक्तिमें प्रधान बाधा है। यह सत्संग छः प्रकारसे होता है—

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति लक्षणम्॥

—यह सत्संग प्रीतिपूर्वक प्रिय द्रव्यके लेने-देने, गुप्त रहस्योंके कहने--सुनने एवं खाने-खिलानेसे होता है। इस प्रकार निःसंग या सत्संगमें रह कर—एकायन पद्धति अवलम्बनपूर्वक अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दनके नाम, रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट्य और लीलाका अनुशीलन करना ही अकेला रह कर जीवित दशामें व्रजवास करना है। व्रजवासीका संग कुसंग नहीं है। उनमें जड़भोगकी तनिक भी प्रवृत्ति नहीं होती। वे सभी भगवत् सेवामें रत होते हैं। ऐसे व्रजवासियों का संग करनेसे ही समदर्शी एवं व्रजजानानुरागी हुआ जा सकता है। आत्मवान व्यक्ति ही स्वरूपमें स्थित होता है। कृष्णसेवामें सदा-सर्वदा नियुक्त व्यक्तिका नाम ही आत्म-क्रीड़ है। भगवान एवं भक्त के प्रति आकृष्ट रह कर सब समय उनकी अनुकूल-सेवामें तत्पर रहनेका नाम ही आत्मरत है। कृष्णैक-सेवातत्पर नहीं होनेसे जीव समदर्शी, आत्मरत, आत्मक्रीड़ और आत्मवान नहीं हो सकता। जिसमें भगवान और भक्तोंके प्रति विद्वेष प्रबल है—उनका संग नहीं करना चाहिए; क्योंकि ऐसे लोगोंका सङ्ग करनेसे सङ्ग करनेवाला साधक न जितेन्द्रिय हो सकता है, और न धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके आपात् रमणीय परन्तु अतिशय दुःखद जालमें गिरनेसे बच ही सकता है। कृष्ण-विमुखता ही सारी विपत्तियों की जड़ है। जो कृष्ण-विमुख होगा, वह अनेक देव-देवियोंकी सेवामें प्रवृत्त होगा ही। देवताओंका सेवक भोगी होता ही है।

जो केवल भगवानकी ही सेवा करते हैं, वे ही विमल वैष्णव हैं,ऐसे विमल वैष्णवोंके प्रति प्रीति होने पर ही निर्जन भजन संभव है। परम-कल्याणको चाहने वालेको भगवान और भक्तकी सेवामें ही तत्पर होना चाहिए। देहमें आत्मबुद्धि नहीं रखनी चाहिए। बल्कि अपनी सभी इन्द्रियों द्वारा (ऋषीक=इन्द्रिय) ऋषिकेशकी ही सेवा करनी चाहिए—उसीको अव्य-भिचारिणी भक्ति कहते हैं। इन्द्रियोंको भगवत् सेवा में नियुक्त नहीं करनेसे, वे विषय भोगोंकी ओर प्रवृत होकर पुनः पुनः जन्म मरणके चक्करमें डाल देंगी।

जागतिक भोग-विषयोंसे अनासक्त रहना ही विरक्तोंके लिए धर्म है। ऐसे विरक्त जन भगवत चरणोंमें प्रीति लाभ कर जगत्के विधि-विधानोंसे ऊपर उठ कर स्वाधीन रूपसे सर्वत्र विचरण करते हैं। भोगीजन भोगोंके अभावके कारण विरक्तका भाव दिखलाते हैं। ये लोग सांसारिक विधि-विधानों के परतंत्र रहनेके लिए बाध्य हैं। पारमहंस्य-धर्मकी सिद्धिके लिए इन सबका परित्यागकर भगवानके शर-णागत होनेकी आवश्यकता है—

एत सब छाड़ि आर वर्णाश्रम धर्म।
अकिंचन हञा लय कृष्णैक-शरण॥

साधारण लोग विधि-पालन और निषेध-त्याग को ही सर्वोच्च अवस्था जानते हैं तथा परमहंस महात्माओंके आचरणमें उक्त दोनोंका अभाव देखकर उनकी अवज्ञा करते हैं। परन्तु यह उनकी अज्ञता है। वे परमहंस भक्तोंके परमोच्च कृष्णैकशरणके भावको समझ नहीं पाते। "दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैः—श्रीरूप गोस्वामीके इस विचारको समझ न पानेके कारण ही अदैव वर्णाश्रममें आबद्ध रहना पड़ता है।

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा

पञ्चम परिच्छेद

श्रीकृष्ण ही अखिल रसामृत समुद्र हैं

अद्वयज्ञान स्वरूप परमतत्त्व ही रस है। जो रस-तत्त्वका अनुभव नहीं कर पाये हैं, उन्हें अद्वयज्ञान-स्वरूप परम-तत्त्वका तनिक भी अनुभव नहीं। अतएव तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा गया है—

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति ॥ (२।७ अनुवाक)

—परमतत्त्व ही रस हैं। उस रसको प्राप्तकर जीव आनन्दको प्राप्त करता है। यदि वह अखण्ड तत्त्व रसरूपी आनन्द-स्वरूप नहीं होता, तो कौन जीवित रह सकता और प्राणोंकी चेष्टा कर सकता। वे ही सबको आनन्द प्रदान करते हैं।

रस-तत्त्वका यही स्वरूप है। भगवत् सम्बन्धिनी प्रवृत्ति श्रद्धा-निष्ठा-रुचि-आसक्तिके क्रमानुसार रति-का रूप ग्रहण करती है, तब उसे स्थायी भाव कहते हैं। इस स्थायी भावमें जिस समय विभाव, अनु-भाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारी—ये चार सामग्री-रूप भाव मिलित होकर स्थायीभावरूप रतिको आ-स्वादन योग्य एक परम चमत्कारमयी अवस्थामें उपस्थित करते हैं, तब वह भक्तिरस होता है। जड़ीय रस और परम चिन्द्रस—इन दोनोंकी प्रक्रिया एक ही प्रकारकी होती है। जहाँपर भगवत् सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वही भक्ति-रस है। जहाँ इतरविषय-संभोग सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायी भाव है, वहाँ जड़ीव तुच्छ-रस है। जहाँ निर्भेद 'ज्ञानानुसन्धिनी प्रवृत्ति स्थायी' भाव होती है, वहाँ निर्विशेष ब्रह्मरस है। तथा जहाँ योगानुसन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव है, वहाँ पारमात्म्य रस है। जिस समय श्रद्धा रति-अवस्था प्राप्त होनेके पहले ही विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—इन चार सामग्रियोंके योगसे रस होनेकी चेष्टा करती है, वहाँ असम्पूर्ण खण्डरस उपस्थित होता है। जड़रस अत्यन्त हेय और तुच्छ होता है। जड़ कवि उस जड़रसका वर्णन करते हैं, वे करें; जड़ानन्दी-गण उसका आस्वादन करते हैं, वे वैसा करें; परन्तु हमें उस रससे कोई तात्पर्य नहीं। हम तो केवल पारमार्थिक रसका ही विवेचन करेंगे। पूर्व प्रदर्शित ब्रह्म-रस और पारमात्मिक-रसमें क्या भेद है—यह आगे दिखलाया जायगा। यहाँ रस-सामग्रीके विवे-चन द्वारा रस-तत्त्वको स्पष्ट करनेकी चेष्टा करूँगा।

रस व्यापारमें स्थायीभावरूप रति ही आधार है। वही सामग्रीके योगसे रस होती है। सामग्री चार प्रकारकी होती है—विभाव, अनुभव सात्त्विक और व्यभिचारी। विभाव दो प्रकारके होते हैं—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन भी दो प्रकार

का होता है—आश्रय और विषय। जिनमें स्थायी भाव होता है, वे रसके आश्रय हैं। जिनके प्रति स्थायीभाव प्रवृत्त होता है, वे रसके विषय हैं। पारमार्थिक रसमें उपास्य वस्तु—विषय और उपासक आश्रय होता है। उपास्य वस्तुके गुण ही उद्दीपन कहलाते हैं। नृत्य, पृथ्वीपर लोटना, गान, अङ्गोंका टूटना, हुङ्कार, जंभाई, दीर्घश्वास, लोकोपेक्षात्याग, लालास्राव, अट्टहास, घूर्णा और हिचकी आना—आदि—ये सब चित्तस्थभावके अवद्योतक होनेके कारण अनुभाव कहलाते हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय—इन आठ चित्त और प्राणोत्तेजित देहगत विकारोंको सात्त्विक भाव कहते हैं। स्थायीभावकी दिशामें विशेषरूपसे निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मृति, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, आमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति और बोध—ये ३३ भाव स्थायी-भावरूपी समुद्रको वर्द्धित करते हैं, इसलिये इनको व्यभिचारीभाव कहते हैं। ये भाव-समूह लहरियोंकी भाँति उठकर भाव-समुद्रमें निमग्न होकर स्थायीभाव-रूपताकी पुष्टि करते हैं।

रस दो प्रकारके होते हैं—मुख्य और गौण। मुख्य रस पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, और मधुर। गौण रस सात हैं—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और विभत्स।

पाँच प्रकारके मुख्यरस रतिभेदसे पृथक्-पृथक् अधिकारीमें उदित होते हैं। शान्त रति समान अवस्थामें ब्रह्म या परमात्माको विषयके रूपमें देखती है। सान्द्र अवस्थामें परव्योमनाथ—श्रीनारायणको विषयके रूपमें लक्ष्य करती है। दास्यरति ऐश्वर्यपरा होने पर परव्योमनाथको विषयके रूपमें ग्रहण करती है। तथा केवला होने पर वहीं श्रीकृष्णको विषय बनाती है। सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुररति कृष्णके अतिरिक्त अन्य किसीको भी विषयके रूपमें नहीं जानतीं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें ऐसा उल्लेख है—

साधन-भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हइले तार प्रेम नाम हय॥
प्रेम-वृद्धि क्रमे नाम स्नेह-मान-प्रणय।
राग-अनुराग-भाव महाभाव हय॥
जैछे बीज इक्षुरस गुड़ खण्ड सार।
शर्करा सिता - मिश्री उत्तम मिश्रि आर॥
एइ सब कृष्णभक्ति-रस स्थायीभाव।
स्थायीभावे मिले यदि विभाव-अनुभाव॥
सात्त्विक-व्यभिचारी भावेर मिलने।
कृष्ण-भक्ति-रस हय अमृत-आस्वादने॥
भक्तभेदे रतिभेद पञ्च परकार।
शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति आर॥
वात्सल्यरति, मधुररति,—ए पञ्च विभेद।
रतिभेद कृष्णभक्ति-रस पञ्चभेद॥

(म० १५।१७६-१८३)

जो लोग इस रस-तत्त्वको भलीभाँति समझना चाहते हैं, वे भक्ति-रसामृत-सिन्धुके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर विभागोंको तथा उसके परिशिष्ट श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थको तत्त्वज्ञ गुरुके पास अध्य-

यन करेंगे। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीरूप और सनातन-शिक्षामें भी इस विषयका संक्षेपमें वर्णन किया गया है—उसकी भी आलोचना करनी चाहिए।

यहाँ श्रीकृष्णका अखिल-रसामृत-समुद्रत्व ही प्रदर्शित होगा। श्रीकृष्ण ही अद्वयज्ञान रूप-परमतत्त्व है—इसे पहले ही दिखलाया जा चुका है। श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं—इसे भी प्रमाणित किया जा चुका है। अब श्रीरूप गोस्वामी द्वारा रचित निम्नलिखित श्लोकका विचार करने पर श्रीकृष्णके सम्बन्धमें सब कुछ ज्ञात हो जायगा।

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण-स्वरूपयोः।
रसनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥
(भ. र. सि, पू. वि. ३२)

[नारायण और कृष्ण—इन दोनों स्वरूपोंमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। तथापि शृङ्गार-रसके विचारसे श्रीकृष्ण स्वरूपकी उत्कर्षता है। इसी प्रकार रस तत्त्वकी स्थिति है]

ब्रह्म और परमात्मा—ये दोनों परम-अद्वयतत्त्व की प्रतीति-विशेष होने पर भी स्वरूप-विहीन हैं। अर्थात् उनका रूप नहीं है। भगवत् तत्त्व ही सर्वदा स्वरूप-संप्राप्त होते हैं। अर्थात् भगवान्का नित्य रूप होता है। भगवत् प्रकाश दो प्रकारका होता है—ऐश्वर्य-प्रधान-प्रकाश और माधुर्य-प्रधान-प्रकाश। ब्रह्म और परमात्म-प्रतीतियोंके सम्बन्धमें जो शान्त-रस होता है, वह अतिशय क्षुद्र है। ऐश्वर्य-प्रधान, भगवत्-प्रकाशके सम्बन्धमें उपासकमें केवल दास्य-रसका ही उदय होता है। वहाँ भगवद् ऐश्वर्य इतना अधिक तथा जीवकी क्षुद्रता इतनी अधिक होती है कि दोनोंके बीच परस्पर एक संभ्रम-बुद्धि हुए बिना रह नहीं सकती। उस संभ्रम-बुद्धिके रहते जीवका उच्च-रसमें अधिकार नहीं होता। अतएव भगवान् कृपापूर्वक (अपने नित्य) श्रीकृष्ण-स्वरूपको जीव के सम्बन्धमें प्रकाश किये हैं। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें ऐसा कहा गया है—

ऐश्वर्य-ज्ञाने सब जगत् मिश्रित।
ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे नाहि मोर प्रीत॥
आमाके ईश्वर माने आपनाके हीन।
तार प्रेमे वश आमि न हई अधीन॥
आमाके त जे जे भक्त भजे जेइ भावे।
तारे से से भावे भजि ए मोर स्वभावे॥
मोर पुत्र मोर सखा मोर प्राण पति।
एह भावे जेइ मोरे करे शुद्ध भक्ति॥
आपनाके बड़ माने, आमाके सम हीन।
सेइ भावे हई आमि ताहार अधीन॥
माता मोरे पुत्र भावे करेन बन्धन।
अति हीन-ज्ञाने करे लालन-पालन॥
सखा शुद्ध-सख्ये करे स्कन्धे आरोहण।
तुमि कोन बड़ लोक तुमि आमि सम॥
प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन।
वेद स्तुति हैते हरे सेई मोर मन॥
एह शुद्ध भक्ति लञा करिमु अवतार।
करिब विविध अद्भुत विहार॥
(आ० ४।१७-२७)

पाठक महोदय! यदि श्रीकृष्ण स्वरूप प्रकटित न हुए होते तो जीवके सख्य, वात्सल्य और मधुर, इन उच्च कोटिके त्रिविध रसोंका विषय ही नहीं पाया जाता। जगत्में भाव ही प्रधान वस्तु है। परतत्त्वके

सम्बन्धमें जीवका ज्ञान स्वभावतः अत्यन्त संकीर्ण या सीमित है। ज्ञान-मार्ग पर कुछ दूर चलकर जीव ईश्वर-भावका कोई पता तक नहीं प्राप्त कर सकता। इसीलिये ज्ञान-प्रधान साधनमें ईश्वरका स्वरूप न जान पानेके कारण उन्हें 'निर्विशेष' या निराकार बतलाकर ही सन्तोष करना पड़ता है। जब ज्ञान-मार्ग पर चलकर भी ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हुई, तब भावमार्गके अतिरिक्त ईश्वर-प्राप्तिका कोई दूसरा उपाय ही नहीं बच रहता। जो जीव जितना ही उन्नत है, ईश्वरभाव उसमें उतना ही अधिक सुख-जनक है। विद्या और बुद्धिके विषयमें जो उन्नति होती है, वह पारमार्थिक उन्नति नहीं है। पारमार्थिक उन्नति तो केवलमात्र उत्तरोत्तर शुद्ध भावके द्वारा ही अर्जनीय है। कोई नितान्त मूर्ख व्यक्ति भी ईश्वरकी कृपाको अधिक मात्रामें प्राप्त कर सकता है। दूसरी ओर कोई सर्व विषयोंमें पारंगत प्रकाण्ड विद्वान भी नास्तिक, पशु-स्वभाव-युक्त एवं ईश्वर-प्रसाद रहित हो सकता है। अतएव ईश्वरकी कृपाकी प्राप्तिमें विद्या, धन, बल, रूप और जड़ीय कार्योंकी कुशलता—ये तनिक भी काम नहीं आते। महापण्डित और महाधनुर्द्धर व्यक्ति एक ओर मदोन्मत्त होकर क्रमशः नरककी ओर अग्रसर होता है तथा दूसरी ओर अत्यन्त मूर्ख और बल-बुद्धि रहित कोई व्यक्ति परमेश्वरकी भक्ति द्वारा परम शान्तिको प्राप्त होता है। अतएव भाव ही परमार्थकी प्राप्तिका मूलाधार है। वही भाव अधिकार भेदसे अधिकांश क्षेत्रोंमें शान्त और दास्यमें परिणत होता है। कोई-कोई विरला भक्त ही सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव तक चरमोन्नतिको प्राप्त होता है। मधुर भावको प्राप्त करनेवाला शुद्ध भक्त ही समस्त प्रकारके रसिक भक्तोंमें श्रेष्ठ है। श्रीचैतन्यचरितामृत में इस विषयमें कहा गया है—

शान्तेर गुण दास्येर सेवन—सख्ये दुई हय।
दास्ये संभ्रम-गौरव-सेवा, सख्ये विश्वासमय॥
आपनाके पालक ज्ञान, कृष्णे पाल्य ज्ञान।
चारि रसेर गुणे वात्सल्य अमृत समान॥
कान्त भावे निजाङ्ग दिया करेन सेवन।
अतएव मधुर रसे हय पंच गुण॥
आकाशादि गुण जेन पर पर भूते।
एक दुई तीन क्रमे पंच पृथिवीते॥
(म० १९।२१९, २२५, २२९-२३०)

क्षुद्र विषय-रसका सेवन करनेवाले मधुर रसका नाम सुनकर उसके प्रति सहज ही विश्वास नहीं कर पाते, बल्कि अपराधकी आशंका करते हैं। प्रचलित दूसरे-दूसरे धर्म प्रायः दास्यरसाश्रित हैं। अतएव उन धर्मोंके पण्डितगण मधुर रसके द्वारा ईश्वर भजनकी बात सुनकर कुछ अंशोंमें भयके कारण और कुछ अंशोंमें पतनकी आशंकाके कारण उसे स्वीकार नहीं करते। वे ऐसा भी सोच सकते हैं कि भजनके सम्बन्धमें मधुर रसकी भावना एक विकृत कल्पना मात्र है। सभी विषयोंमें निम्नाधिकारी व्यक्ति उच्चाधिकारीकी क्रिया-मुद्राओंको भ्रम ही मानते हैं। परन्तु सौभाग्यसे वही निम्नाधिकारी जब स्वयं उच्चाधिकारमें पहुँच जाता है, तब ऐसा विचार करता है कि 'ओफ्! मैं कैसा मूर्ख था कि इस उच्चाधिकार की पहले निन्दा करता था। यह मेरी गलती थी।' अतएव हम नम्रतापूर्वक दूसरे-दूसरे धर्मावलम्बियोंसे

निवेदन करते हैं कि यह विषय अत्यन्त गम्भीर है। इस विषयमें भलीभाँति प्रवेश किये बिना कोई कुसंस्कार विशिष्ट सिद्धान्त न बना लें। हृदय-भवनमें हृदयेश्वरको सिंहासन पर बैठाकर इस रससे उनकी उपासना करके देखिये, यदि अच्छा लगे, तो सद्-गुरुका आश्रय लेकर इस रसका आस्वादन करने के लिये प्रयत्न कीजिए। यदि अच्छा न लगे तो, अपने अधिकारके विरुद्ध जानकर इसका परित्याग कीजिए। परन्तु याद रखिए, किसी भी परिस्थितिमें किसी प्रकारसे अवहेला न हो।

इस विषयमें यहाँ विस्तृत विचारका अवकाश नहीं। परन्तु यहाँ तक तो कहा ही जा सकता है कि मधुररसका अधिकारी व्यक्ति नारायण आदि किसी भी दूसरे स्वरूपोंको उपासनाका विषय नहीं बनाते। केवल एक श्रीकृष्ण-स्वरूप ही इस सर्वोच्च रसके विषय हैं। निरपेक्ष होकर तथा मतवादजनित पूर्व संस्कारके हाथोंसे मुक्त होकर विचार करनेसे यही सिद्धान्तित होगा कि रसतत्त्वमें सब रूपोंसे श्रीकृष्ण रूप ही निर्मल और श्रेष्ठ है। श्रीकृष्णरूप सख्यादि रसोंमें भक्तोंके साथ साम्यगुणके आश्रय है अर्थात् उक्त रसमें श्रीकृष्ण और भक्तोंके समजातीयभाव होते हैं। इसीलिये श्रीकृष्णस्वरूप अन्य स्वरूपोंसे न्यून या छोटे नहीं हैं। न्यून या छोटा होना तो दूर रहे, दूसरे सभी रूपोंसे सब प्रकारसे श्रेष्ठ और प्रबल हैं। दूसरे स्वरूप जिस प्रकार चिन्मय, जड़ातीत, पूर्णगुण-सम्पन्न और माया विजयी हैं, श्रीकृष्ण-स्वरूप भी वैसे ही अप्राकृत और गुणशाली हैं। श्रीकृष्ण स्वरूपमें अधिकरूपमें यह विशेषता है कि इस हेय प्रपंचमें भी अपनी पूर्ण चिल्लीलाको अपनी चित् शक्तिके द्वारा जड़ेन्द्रियोंके सामने भी प्रत्यक्ष कर दिखलाते हैं। प्रपंचमें अवतीर्ण होकर प्रापंचिकवत् व्यवहारमें भी वे सर्वत्र ही सर्वैश्वर्यसम्पन्न रहते हैं। बालकोंके साथ प्राण प्रिय बालकोंकी भाँति, माता-पिता आदि गुरुजनोंके निकट आश्रित शिशुकी भाँति, मधुर रसाश्रित भक्तोंके निकट प्राणनाथकी भाँति व्यवहारके समय भी ईशिता (ईश्वरत्व) की पराकाष्ठाका प्रदर्शन किये हैं। मनुष्योंके निकट नर-लीला करते-करते भी समस्त आधिकारिक देवताओं के सर्वेश्वरकी भाँति कार्य कर पण्डितोंको भी आश्चर्य-चकित कर दिये हैं। यदि कृष्ण कृपापूर्वक गोपभावसे ऐसी जगदुन्मादिनी लीलाका प्रकाश नहीं करते, तो परमेश्वर मधुररसके विषय भी है—ऐसा कोई भी अनुभव नहीं कर पाता। कृष्णलीला नर-कल्पनाका विषय नहीं है अथवा वंचित लोगोंका अधर्म एवं अन्धविश्वास नहीं है। इसे तो केवल परमार्थविद् व्यक्ति ही समझ सकते हैं। कृष्णलीलामें व्रजलीला ही सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि इसीमें रसके विषय में जीवका सर्वोत्तम लाभ होते देखा जाता है। तार्किक और नैतिक बुद्धिवाले कृष्णलीलाकी महिमा-का स्पर्श ही नहीं कर सकते। जिन भक्तोंने श्रीकृष्ण-की व्रजलीलाकी माधुरीका आस्वादन किया है, केवल वे ही उसकी माधुरीको जान सकते हैं। व्रज-लीलाको हृदयङ्गम करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। तर्क, नीति, ज्ञान, योग और धर्म-अधर्मके विचार इस दिशामें अत्यन्त क्षुद्र प्रतीत होने लगते हैं तथा व्रजतत्त्वका महादीपक अप्राकृत बुद्धिशाली व्यक्तियों-के हृदयमें देदीप्यमान होकर चिदालोकका वितरण करता है। इस विषयका निम्नलिखित कारिकाओंमें इस प्रकार वर्णन है—

विभावाद्यैर्जडोद्भूतै रसोयं व्यवहारिकः ।
अप्राकृतैर्विभावाद्यै रसोयं पारमार्थिकः ॥
परमार्थरसः कृष्णस्तन्माया छायया पृथक् ।
जडोदितं रसं विश्वे वितनोति बहिर्मुखे ॥
भाग्यवांस्तं परित्यज्य ब्रह्मानन्दादिकं स्वकं ।
चिद्विशेषं समाश्रित्य कृष्णरसाब्धिमाप्नुयात् ॥
तन्त्रोपनिषदं साक्षात् पुरुषं कृष्णमेव हि ।
आत्मशब्देन वेदान्ता वदन्ति प्रीतिपूर्वकम् ॥

[—जड़ीय विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—इन चार प्रकारकी सामग्रियोंद्वारा पुष्ट रति जब रस होती है तो वह व्यवहारिक होती है। अप्राकृत विभाव आदि सामग्रियों द्वारा पुष्ट रति जब रसका रूप धारण करती है, तब वह पारमार्थिक है। पारमार्थिक रसके विषय एकमात्र कृष्ण हैं। छायारूपा मायामें उस रसका तो हेय प्रतिफलन मात्र है। अतएव वह चिद् रससे पृथक् है। बहिर्मुख जड़ जगतमें जड़ीय रसकी ही विस्तृति है। सौभाग्यवान व्यक्ति उस स्वगत ब्रह्मानन्द आदिका परित्याग कर चिद्-विशेषका आश्रय कर कृष्ण-प्रेमरूप रससमुद्रमें निमज्जित हो पड़ता है। बृहदारण्यक उपनिषद्में "तन्त्रोपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"—(—मैं उपनिषदमें वर्णित पुरुषकी जिज्ञासा करता हूँ।) इस मन्त्रके उद्दिष्ट पुरुष ही साक्षात् कृष्ण हैं। वेदान्तमें आत्माशब्दका उल्लेख कर बड़े प्रेमसे कृष्णका ही वर्णन किया किया है।]

रस दो प्रकारके हैं-व्यवहारिक और पारमार्थिक। जड़ीय विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये जड़ीय सामग्रियाँ जब जड़ोन्मुखी रतिको रसताकी अवस्थामें लाती हैं, तब व्यवहारिक जड़ देहगत स्त्री-पुरुषोंका रस होता है। यह रस अतिशय तुच्छ, अनित्य और विकृत होता है। यह रस अप्राकृत-रस-तत्त्वका हेय प्रतिफलनमात्र है। स्थूल और लिंग-शरीरोंके सम्बन्धसे मुक्त होने पर शुद्ध जीव चिन्मय है। जीवकी शुद्ध चिन्मय सत्तामें स्वभावगत सहज रति भी चिन्मयी होती है। वही रति स्थायीभाव बनकर चिन्मय विभाव, चिन्मय अनुभाव, चिन्मय सात्त्विक और चिन्मय व्यभिचारी भावसमूहको सामग्रीके रूपमें प्राप्तकर जब आस्वादनके योग्यक अवस्था लाभ करती है, तब चिन्मय-रस उदित होता है। विशेषतः जब चिन्मय आलम्बनके अन्तर्गत चिन्मय कृष्णस्वरूप इस रसके विषय होते हैं, तभी कृष्णभक्ति-रस उदित होता है। कृष्ण ही परमार्थ रस हैं। उनकी मायाशक्ति अपनी छायास्वरूपमें कृष्ण-विमुख जीवमें जड़ोदित रसका विस्तार करती है। सौभाग्यवान पुरुष उस हेय रसका परित्याग कर और जीवगत क्षुद्र ब्रह्मानन्द रसको अतिक्रम कर चित्तत्त्वमें जो निर्मल विचित्र विशेष है, उसीका अवलम्बन कर कृष्णरूप रस-समुद्रको प्राप्त करता है। कोई कृष्ण-रसको सांसारिक रस मानकर लघु या हेय न समझ बैठे—इस आशङ्कासे "श्रीउज्ज्वल-नीलमणि" नामक ग्रन्थमें नायक-भेद प्रकरणके सोलहवें श्लोकमें कहा है—

लघुत्वमत्र यत् प्रोक्तं तत्तु प्राकृत-नायके ।
न कृष्णे रसनिर्यास-स्वादार्थमवतारिणि ॥

शृंगार-रसका सम्पूर्ण व्यापार मायिक होनेपर वह अतिशय लघु और घृणीत है; परन्तु वह व्या-

पार शुद्ध अप्राकृत होने पर अत्यन्त गुरु और चिज्जगतके लिये परम आदरणीय है। इस रसमें तनिक भी जड़ व्यापार नहीं है । स्थूल और लिंग देहसे इसके विभावका कोई सम्बन्ध नहीं है । केवल अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावोंकी ही स्थूल और लिंग देहमें व्याप्ति होती है। रस निर्यास का आस्वादन करनेके लिये ही प्रपंचमें श्रीकृष्णका उदय है । वे अवतार नहीं, स्वयं अवतारी हैं। अवतारी अप्राकृत सर्वजीवनायकके लिये अप्राकृत शृङ्गारपर्वमें जो परकीया आदि विचित्रताएँ हैं, वे कदापि हेय और घृणीत नहीं हो सकती हैं। इस विषयमें जितना ही निरपेक्ष होकर विचार किया जायगा, उतना ही उच्च कोटिका सुसिद्धान्त प्राप्त होगा। नैतिक व्यक्तियोंको जड़ीय रसके प्रति जो घृणा होती है, उसे यदि अप्राकृत रसचिन्तनकी ओर लगाया जाय, तो उसे एक कुसंस्कारके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है । उस कुसंस्कारके अधीन होकर चिन्मय जीवके अप्राकृत-देह द्वारा अप्राकृत कृष्णके साथ रासलीला आदिरूप अप्राकृत-रसको भाग्यहीन व्यक्ति ही घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। इससे उनकी आत्मवंचनाके अतिरिक्त और फल ही क्या हो सकता है ? श्रीकृष्ण ही एकमात्र औपनिषद्-पुरुष हैं।वेदान्तोंमें अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनको "आत्म" शब्दसे सम्बोधित किया गया है—

"आत्मैवेदं सर्वमिति। स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन् आत्म रतिरात्मक्रीड आत्म-मिथुनः आत्मानन्दः स स्वराड् भवति। "—छान्दोग्य (७।२५।२)

माण्डूक्यमें भी कहा गया है—

'सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ।'

(मा० उ० १।२)

यह सब कुछ 'अवर ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मशक्तिसे उत्पन्न तत्त्व है। आत्मरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। वे चतुष्पाद हैं अर्थात् एक होकर भी अचिन्त्यशक्ति-के प्रभावसे सदा-सर्वदा चार स्वरूपोंमें महारसमय हैं। श्रीजीव गोस्वामीने इन चार स्वरूपोंका वर्णन स्वरचित भगवत् सन्दर्भमें किया है—

"एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वदैवस्वरूप-तद्रूपवैभव-जीव-प्रधानरूपेण चतुर्द्धा-वतिष्ठते। सूर्यान्तर-मण्डलस्थित-तेज इव मण्डल, तद्बहिर्गत-तद्रश्मि, तत्प्रतिच्छविरूपेण।"

[परतत्त्व एक हैं। वे स्वाभाविक अचिन्त्यशक्ति सम्पन्न हैं । इस शक्तिके प्रभावसे वे सदा-सर्वदा चार स्वरूपोंमें विद्यमान रहते हैं—स्वरूप, तद्रूप-वैभव, जीव और प्रधान। सूर्य, सूर्य मण्डलके भीतर-का तेज, उसकी बहिर्गतरश्मियाँ, उसकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—ये चार अवस्थाएँ कुछ अंशोंमें दृष्टान्त स्वरूप हैं।]

उन कृष्णका स्वरूप, तद्रूपवैभव और जीवगत जो शुद्ध चिन्मय-रस विलास है, वह अत्यन्त उपा-देय है। निम्नलिखित कारिकामें देखिए--

वेदार्थं बृंहणं यत्र तत्र सर्वे महाजनाः ।
अन्वेषयन्ति शास्त्रेषु शुद्धं कृष्णश्रितं रसम् ॥
सनकादि-शिव-व्यास-नारदादि-महत्तमाः ।
शास्त्रेषु वर्णयन्ति स्म कृष्णलीलात्मकं रसम् ॥
लब्धं समाधिना साक्षात् कृष्ण-कृपोदितं शुभम्।
अप्राकृतञ्च जीवेहि जड़भाव-विवर्जिते ॥

श्रीमद्भागवत आदि वेदार्थ बृंहणरूप शास्त्रमें महाजनोंने कृष्णाश्रित शुद्ध-रसका अन्वेषण किया है। सनकादि, शिव, व्यास और नारदादि महर्षियों ने अपने-अपने प्रकाशित ग्रन्थोंमें जड़भाव-रहित शुद्ध जीवके द्वारा साक्षात् समाधि लब्ध कृष्णकी कृपासे उदित अप्राकृत कृष्णलीलात्मक-रसका वर्णन किया है।

ऐसे अमृतमय श्रीकृष्ण-रसको इस जगतमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने ही लाया है, उनके पहले आज तक किसीने भी नहीं लाया। यह दिखलानेके लिये श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीका एक श्लोक उद्धृत कर रहा हूँ—

प्रेमानामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावन-विपिन-महामाधुरीषु प्रवेशः।
को वा जानाति राधां परमरस चमत्कार माधुर्यसीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परम करुणया सर्वमाविश्चकार॥

(चैतन्यचन्द्रामृत १३०)

हे भ्रातः! प्रेम-नामक परम पुरुषार्थका नाम किसने श्रवण किया था? श्रीहरिनामकी महिमा कौन जानता था? श्रीवृन्दावनकी परम चमत्कारमयी माधुरीमें किसका प्रवेश था? परमाश्चर्यमय माधुर्य-रसकी पराकाष्ठा श्रीमती राधिकारूपी पराशक्तिको ही भला कौन जानता था? एकमात्र परम करुणा-मय श्रीचैतन्यचन्द्रने ही इन सब तत्त्वोंका जीवोंके प्रति कृपापूर्वक आविष्कार किया है।

ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

भगवानकी कथा

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ८, संख्या ७, पृष्ठ १६५ से आगे)

मनोधर्मसे उत्पन्न कष्टोंसे छुटकारा पाना कठिन है। मनुष्यके मनोधर्मगत कानूनके अनुसार मनुष्य हत्या करनेसे प्राण-दण्डका विधान है, किन्तु मनुष्येतर प्राणियोंकी हत्या करनेसे ऐसा नियम लागू नहीं होता। Providence (विधि) का दूसरा ही विधान है। इस विधानके अनुसार मनुष्य हत्या करनेसे जैसा दण्ड मिलता है, मनुष्येतर प्राणीकी हत्या करनेसे वैसा ही दण्ड मिलता है। दोनों प्रकार के कर्मोंमें ही हत्याकारी दण्डनीय है। नास्तिक स्वभावके व्यक्ति निर्विघ्न रूपसे पाप कार्य करनेके लिए भगवानके अस्तित्वको ही स्वीकार करना नहीं चाहते। स्मृति शास्त्रोंके अनुसार गृहस्थोंके द्वारा इच्छा से या अनिच्छासे कई प्रकारसे प्राणी हिंसा रूप पाप हो जाता है। ऊखल, धान्य पीसनेकी चक्की, चूल्हा, पानीका घड़ा, और झाड़ू आदिके द्वारा प्रत्येक गृहस्थ का अनिच्छासे भी प्राणी-हिंसा रूप पाप हो जाता है। इस पापसे छुटकारा पानेके लिए पञ्चसूना-यज्ञ की व्यवस्था की गई है। इसलिए यज्ञेश्वर विष्णुको निवेदित यज्ञावशिष्ट द्रव्यादि अथवा प्रसादादिका भोजन करना ही एकमात्र विधि है। किन्तु जो व्यक्ति

स्वार्थपर होकर केवल अपनी इन्द्रिय-तृप्तिके लिए अर्थात् विष्णुसेवाका अनुष्ठान न कर जिह्वा-लोलुपता के लिए भोजन पकाते हैं, समस्त पापोंके फल वे ही भोगते हैं। यही Providence का विधि है। इन पापोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रायः प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी गृहस्थ ही भगवान विष्णुकी सेवा करते हैं।

अस्तु, समाज या देशके नेताओंका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने एवं अपने अधीनस्थ व्यक्तियोंके कल्याणार्थ अपने समस्त कर्म ही विष्णुके प्रीतिके लिए करें। जनसाधारण उनके आदर्शका अनुसरण करते हैं। इसलिए उन्हें अत्यन्त सावधानीपूर्वक यज्ञ के लिए कार्य करनेकी विधियोंकी शिक्षा करनी चाहिए। समाजके मंगलके उद्देश्यसे यज्ञानुष्ठान करने की विधियाँ शिक्षा पानेके लिए एक पारमार्थिक विश्वविद्यालयकी भी आवश्यकता है। यज्ञानुष्ठान कार्यको लक्ष्य कर भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥
(गीता ३।२१)

श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करते हैं, साधारण व्यक्ति भी उन्हींका अनुसरण करते हैं। वे जिसे प्रमाणके रूपमें स्वीकार करते हैं, सभी उसीका अनुसरण करते हैं।

परन्तु यह बड़े खेदकी बात है कि जो व्यक्ति समाज एवं देशमें श्रेष्ठ समझे जाते हैं, वे ही अधिकतर विष्णु-विद्वेषी हैं। इसलिए यज्ञके लिए या विष्णु-प्रीतिके लिए क्या वे कार्य कर सकेंगे? और यदि यज्ञार्थ या विष्णु प्रीतिके लिए कार्य नहीं करते, तो वे अपने पाप कार्यके फलसे कैसे छुटकारा पायेंगे? यदि श्रेष्ठ व्यक्ति ही यह प्रमाणित नहीं करते कि विष्णु ही सर्वव्यापी तत्त्व वस्तु हैं, एवं वे ही सविशेष-निर्विशेष विचारादिसे जगतमें ओतप्रोत रूपसे वर्त्तमान हैं, तो दूसरे व्यक्ति क्या समझेंगे? समस्त विषयोंके वे ही एकमात्र मालिक या हृषीकेश हैं। हम जगतके भोक्ता या मालिक नहीं हैं। यदि वे अनुग्रह कर हमें प्रसादरूपमें कुछ दें, तो उसीको ग्रहण करना हमारा कर्त्तव्य है। अन्य किसी भी वस्तुकी अभिलाषा करना अन्याय है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्येक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
(ईशोपनिषद् १)

यदि देश या समाजके नेतागण भगवानको या विष्णु-तत्त्वको केन्द्र कर अपना कार्य करते हैं, तो ही उनका और उनके अनुगत व्यक्तियोंका परम मंगल होता है। यदि ऐसा न कर आपही विष्णु बनकर कनक-कामिनी और प्रतिष्ठादिकी इच्छासे अपने अनुगत व्यक्तियोंका पालन करते हैं, तो उनके ऐसे फल्गु-आदर्शको देखकर अधिकांश दुर्भागे व्यक्तियोंके पतन के अतिरिक्त और कोई उपकार नहीं होता।

नेतागण अपने सीधे-सादे अनुयायियोंको व्यर्थ ही उत्तेजित कर नाना प्रकारके पाप कार्योंमें प्रवृत्त करा देते हैं। इस तरह व्यर्थ ही उनका अहित कर अपनी लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाकी वृद्धि करते हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि क्षणिक लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा—ये सब

शरीर त्यागके साथ-साथ ही नष्ट हो जाते हैं और जिन पाप कार्योंका अवलम्बन कर वे लाभ-पूजा-प्रतिष्ठादि प्राप्त होते हैं, वे पूर्व संस्कारके रूपमें सूक्ष्म शरीरके साथ मिश्रित होकर जीवको प्रारब्ध—बीजके रूपमें जन्म-जन्मान्तरों तक कर्मचक्रमें गिराकर नाना योनियों भ्रमण कराते हैं।

तत्त्व ज्ञान शून्य नेतागण जो प्रमाणित करते हैं, उसका साधारण व्यक्ति अनुसरण करते हैं। इसलिए नेताओंका खूब सावधानीपूर्वक आचरण करना चाहिए। यदि नेतागण यज्ञके लिए कर्म करनेका कौशल जानकर कार्यक्षेत्रमें उतरते हैं, तभी कल्याण की संभावना है। आप चतुर चिकित्सक न होकर रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं, तो यह धृष्टता मात्र है।

जनसाधारणका रोग क्या है, एवं उनकी औषध और पथ्यादिकी क्या व्यवस्था हो सकती है, इसे न जानकर ही उन रोगियोंकी इच्छापूर्त्तिके लिए इन्द्रिय-सुखकर चिकित्साके द्वारा कभी भी उनका उपकार नहीं हो सकता। इससे रोग और भी बढ़ जायगा और रोगी विकारग्रस्त होकर चिकित्सकका ही प्राण-ले बैठेगा।

विष्णुके प्रति उदासीनता (विमुखता) ही जन-साधारणका मूल रोग है। उस विषयमें उनकी कोई चिकित्सा न कर ऊपरी सहानुभूति दिखलानेसे रोगियोंको कुछ तात्कालिक शान्ति तो मिल सकती है, किन्तु इसके द्वारा कोई यथार्थ एवं नित्य कल्याण नहीं होता। रोगीको औषध एवं सुपथ्यादिका सेवन न कराकर केवलमात्र कुपथ्यका सेवन करानेसे रोगी की मृत्यु अवश्यंभावी है।

यज्ञावशिष्ट भगवत्-प्रसाद ही उनके भव रोगका एकमात्र पथ्य है। भगवानकी लीला कथाओं एवं उनकी महिमाका श्रवण-कीर्त्तन, भगवत विग्रहका दर्शन, अर्चन, दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन रूप नवधा भक्तिका आचरण ही उक्त रोगका एक ही औषध है। ऐसे कार्यानुष्ठान द्वारा ही जगत्का यथार्थ कल्याण होगा, अन्यथा अमंगल ही होगा। ऐसे अनुष्ठानसे मानव-समाजका अनिष्ट नहीं होता। अधिकन्तु समस्त प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। जो सुविधावादी अर्थनैतिक हैं, वे इस विषयका विचार-विवेचन कर सकते हैं।

श्रीगाँधीजी प्रमुख नेताओंने "संसारमें शान्ति कैसे हो सकती है ?"—इसके लिए बहुत ही चेष्टा की हैं और करते हैं, परन्तु सच्चे महाजनगण ऐसी चेष्टाओंके प्रति उत्साह नहीं दिखलाते। इसलिए ऐसी चेष्टाएँ फलवती नहीं होतीं और न होगीं।

निर्विशेषवादियोंके भगवान देख नहीं सकते, खा नहीं सकते और सुन भी नहीं सकते। इसलिए निर्विशेषवादियोंके भगवान जगतमें कभी भी शान्ति नहीं नहीं ला सकते। जो इन्द्रियादि रहित हैं, वे कैसे जगतकी दुर्दशा देख या सुन सकते हैं ? ऐसी भगवत् चर्चासे जगतमें अमङ्गल ही होता है, मङ्गल नहीं। निर्विशेष-ज्ञान चर्चा द्वारा तत्त्ववस्तुका जो सन्धान पाया जाता है, उसमें भगवानके पूर्ण-सविशेषत्वकी उपलब्धि नहीं होती। शुष्क-ज्ञान आलोचनाके द्वारा केवल क्लेश ही लाभ होता है, तत्त्ववस्तुका पूर्ण सन्धान नहीं पाया जाता। अतएव सविशेषपरायण होनेसे ही हमारे नेतागण साधारण जनताका उपकार कर सकते हैं।

दूसरे प्रकारके व्यक्ति शरीर और मनके कार्यमें कुशल हैं। जड़-कर्मानुष्ठानमें व्यस्त अत्यन्त निम्न-स्तरके व्यक्ति यह विश्वास ही नहीं कर पाते कि इस जगतको छोड़कर एक वैकुण्ठ जगत भी है। जड़ शरीरको सर्वस्व समझनेवाले साधारण व्यक्ति अन्य प्राणियोंकी तरह आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि कार्यमें इतने मुग्ध हैं कि वे पाप-पुण्यका कोई विचार न कर केवल शरीर सम्बन्धी इन्द्रिय तृप्तिकर कार्योंमें अक्लान्त परिश्रम करते हैं। वे मोघाशा या मोघकर्मा कहलाते हैं। जगत्के अहितकर ध्वंसोन्मुख कार्यके पुरोहित जड़-वैज्ञानिक नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचा के लिए सुखकर नाना प्रकारके द्रव्य निर्माण कर भोगियोंके बीच परस्पर जगज्जञ्जाल प्रसवकारी घोर प्रतियोगिता लगा देते हैं। ऐसे कार्योंके द्वारा वे जितना ही अपनेको स्वाधीन समझते हैं, उतना ही वे पराधीन हो पड़ते हैं, उसके द्वारा जितना ही धन का संग्रह होता है, उतनी ही अशान्ति भी बढ़ती है। भगवानकी भोग्या लक्ष्मीको निगलनेकी जितनी ही चेष्टा होती है, उतने ही परिमाणमें रावणगोष्ठीका सवंश ध्वंश अनिवार्य है। ऐसे कार्योंके परिणाम स्वरूप शरीर रक्षाका अतिसाधारण कार्य अर्थात् कुछ आहार कर जीवन धारण करना भी दुष्कर हो जाता है।

ऐसे निम्न स्तरके व्यक्तिसे कुछ उन्नत पर-जन्म विश्वासी कर्माश्रयी व्यक्ति परजन्ममें किस तरह जीवन-यात्रा और इन्द्रिय-सुख सुचारु रूपसे सम्पादित हो सकता है, इसलिए दान-पुण्यादि कार्यमें रत रहते हैं। ये दोनों प्रकारके व्यक्ति यह नहीं जानते कि निष्काम-कर्मयोग ही कर्मका कौशल है। कुशल-कर्मी या कर्मयोगी पूर्वोक्त मूर्ख कर्मियोंकी तरह अत्यन्त आसक्तिका अभिनय करते हुए जगतके कल्याणके लिए कर्मयोग-कौशलका उपदेश देते हैं। इस प्रकारके कर्मयोग-कौशल द्वारा अपना और जगत का भी मंगल होता है। भगवान श्रीकृष्णने गीतामें यही उपदेश दिया है:—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोक-संग्रहम्॥
(गीता—३।२५)

जिस प्रकार अविद्वान व्यक्ति अत्यन्त आसक्तिके साथ कर्म कर शरीर-धर्मका पालन करते हैं, तुम भी उसी प्रकार विद्वान होकर लोक संग्रहके लिए वैसी ही आसक्तिके सहित कर्मयोगका अनुष्ठान करो। तत्त्व ज्ञान सम्पन्न विद्वान व्यक्ति साधारण लोगोंकी भाँति शरीर यात्राके लिए जो कर्म करते हैं, वे सभी कर्म यज्ञार्थ या विष्णुकी प्रीतिके लिए ही करते हैं। साधारण व्यक्ति उन विद्वानोंको अपने ही समान कर्मी-सम्प्रदाय भुक्त समझने पर भी वे तत्त्वविद् पुरुष मूर्ख कर्मी-सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं होते, वे विद्वान कर्मयोगी होते हैं।

आजकल जड़ विज्ञान कर्म जगतके रूपमें नाना प्रकारसे प्रकाशित हो रहा है। कर्म-बन्धनके जाल-रूपमें नाना प्रकारकी मशीनें, कारखाने, विद्यालय, अस्पताल आदि निर्माण किया गया है। प्राचीन युगमें भौतिक कर्मोंका इतना प्रचार नहीं था। असत्सङ्गके द्वारा इस समय बहुत प्रकारके बन्धनोंका आविष्कार हुआ है। इसलिए जो विद्वान कर्मयोगी हैं, वे इन सब कार्योंको यज्ञके लिए नियुक्त कर कर्म-कुशल बन सकते हैं। (क्रमशः)

—त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

उपनिषद्-वाणी

[बृहदारण्यक]

प्रजापतिके दो प्रकारके पुत्र थे-देव और असुर। दोनोंमें परस्पर स्पर्द्धा (डाह) चलने लगी। देवताओं ने विचार किया कि हम लोग यज्ञमें उद्गीथ (सामगान) द्वारा असुरोंका अतिक्रमण करें। ऐसा विचार कर उन्होंने वाक्को उद्गान (सामगान) करनेके लिये अनुरोध किया। उन लोगोंकी प्रार्थनानुसार जब वाणी उद्गान करने लगी, तब असुरों ने देवताओंका अभिप्राय जानकर वाणीको पापसे विद्ध कर दिया। अनुचित भाषण अर्थात् असत्य भाषण ही वह पाप है, जिससे वाणी पापसे विद्ध हुई। ऐसा देखकर देवताओंने घ्राणको उद्गान करनेके लिए कहा। घ्राण द्वारा उद्गान आरम्भ किये जाने पर असुरोंने घ्राणको भी पापसे विद्धकर डाला। अनुचित सूँघना ही वह पाप है। फिर देवताओंने चक्षुको उद्गान करनेके लिये कहा। चक्षुने उद्गान करना प्रारम्भ किया। असुरोंने ऐसा जानकर चक्षुको भी पापसे विद्ध कर दिया। निषिद्ध पदार्थोंका दर्शन ही वह पाप है। तत्पश्चात् देवताओं ने श्रोत्रको उद्गान करनेके लिये कहा। असुरोंने श्रोत्रको भी पापसे विद्ध कर दिया। ईश्वरकी निन्दा करना, परनिन्दा करना तथा आत्म-प्रशंसा सुनना ही वह पाप है। तब देवताओंने मनको उद्गान करनेके लिये कहा। परन्तु असुरोंने मनको भी पापसे विद्ध कर दिया। अनुचित संकल्प अर्थात् काम, क्रोध लोभ, मद, मोह, शत्रुता आदिका संकल्प ही वह पाप है। अबकी बार देवताओंने मुखके भीतर स्थित प्राणको उद्गान करनेके लिये कहा। असुरगण प्राणको उद्गान करते हुए जानकर भी उसे पापसे विद्ध करनेमें असमर्थ रहे। तब देवतागण (विजेता-होकर) प्रकृतिस्थ हो गये और असुरोंका पराभव हुआ।

उस प्राण देवताने वागादि इन्द्रियोंके पापको दूर कर उनको यथार्थ स्थान पर स्थापित कर दिया। वाक् देवता मृत्युको पार कर अग्निरूपमें देदिप्यमान हुए। प्राण देवताने भी मृत्युका अतिक्रमण कर वायुका रूप धारण कर लिया। चक्षुदेवता मृत्युको पार कर आदित्य हुए। श्रोत्र और मन चन्द्रमा हुए। तत्पश्चात् प्राणने अपने लिये खाद्यान्नका आवाहन किया। क्योंकि खाद्य द्वारा ही प्राणोंकी रक्षा होती है। प्राणद्वारा अन्नका आवाहन किये जाने पर दूसरी इन्द्रियोंने प्राणसे कहा कि तुम जो अन्नका आवाहन कर रहे हो, उससे तो केवल तुम्हारा ही खाद्य हुआ। उस खाद्यान्नमें हमलोगोंको भी भागी बनाओ। उनकी बात सुनकर प्राणने कहा कि तुम लोग मेरे अन्दर प्रवेश करो। इस पर दूसरी इन्द्रियाँ प्राणमें प्रविष्ट हो गयीं। तात्पर्य यह कि प्राणमें आहार देनेसे सारी इन्द्रियोंकी पुष्टि होती है। प्राणका एक दूसरा नाम अंगिरस (अङ्गका रस अर्थात् सार) भी है।

वाक् ही साम है। परमान नामक सामके उद्गाता जब सामका अभ्यास करते हैं, तब इस मंत्रका गान करते हैं—'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय।' अर्थात् मुझे असत् से सत्की ओर ले जाओ, अन्धकारसे प्रकाशमें ले जाओ, एवं मृत्युसे अमृतकी ओर ले जाओ। अतएव मृत्यु ही अन्धकार है। उससे अमृतमें जाना कर्त्तव्य है।

पहले एकमात्र पुरुष ही थे। अपनेको उन्होंने दो भागमें विभक्त किया। एक मनु और दूसरी शतरूपा। शतरूपा सोचने लगी कि यह पुरुष अपने अङ्गसे मुझे उत्पन्न कर मेरा सम्भोग क्यों करता है, इसलिए मैं अपनेको गोपन करूँगी। ऐसा सोचकर शतरूपाने गाय का रूप धारण किया। तब मनुने वृषभ (बैल) का रूप धारण कर लिया। शतरूपाने घोड़ीका रूप धारण किया, तो मनुने घोड़ेका रूप धारण कर लिया। शतरूपाने गदहीका रूप धारण किया, तो मनुने गदहेका रूप धारण कर लिया। इस तरह इन दोनोंसे ही समस्त प्राणियोंका जोड़ा उत्पन्न हुआ।

यह जगत् उत्पत्तिके पूर्व नाम-रूप रहित था। सृष्टिके अन्तर नामके रूपमें व्यक्त हुआ। आत्मा शरीरके केशसे हाथ पैरके नख पर्यन्त व्याप्त होकर शरीरमें रहने लगा। किन्तु उसे कोई देख नहीं पाते। यह आत्मा पुत्रसे, धनसे एवं अन्यान्य सभी वस्तुओं से भी प्रिय है। आत्माके अतिरिक्त दूसरी वस्तु प्रिय बनने पर भी वह वस्तु नष्ट हो जाती है। तब जीव उसके लिए शोक करता है। इसलिए आत्मा—जो सबसे प्रिय वस्तु है, उसीकी उपासना करना उचित है। पहले ब्रह्म अकेले थे। अकेली अवस्थामें विभूतियुक्त कर्म किया नहीं जा सकता—ऐसा सोचकर उन्होंने क्षत्रियकी सृष्टि की। देवताओंमें इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, मेघ, यम, मृत्यु और ईशानादि क्षत्रियों को उत्पन्न किया। अतएव क्षत्रियसे और कोई उत्कृष्ट नहीं है। इसलिए राजसूय यज्ञमें ब्राह्मण नीचे बैठ कर क्षत्रियकी उपासना करते हैं। ब्राह्मण क्षत्रियकी योनीस्वरूप हैं। इसलिए राजागण उत्कृष्टताको प्राप्त होने पर भी यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणका ही आश्रय ग्रहण लेते हैं। अन्तः क्षत्रिय यदि ब्राह्मणकी हिंसा करते हैं, तो वे पापी हो जाते हैं।

ब्रह्म विभूतियुक्त कर्म करनेमें असमर्थ होने पर उसने वैश्य जातिकी सृष्टिकी। देवताओंमें वसु, रुद्र, आदित्य विश्वदेव एवं मरुत् आदिको उनके गणोंके साथ उत्पन्न किया। पुनः विभूतियुक्त कर्म करनेमें असमर्थ होने पर शूद्रवर्णकी सृष्टि की। पूषा शूद्रवर्ण के हैं। पृथ्वी ही पूषा है। पोषणके अर्थमें पूषा है।

फिर भी विभूतियुक्त कर्म करनेमें असमर्थ होने पर ब्रह्मने धर्मकी सृष्टिकी। धर्म क्षत्रियोंका भी नियन्ता है। अतएव धर्मसे और कोई श्रेष्ठ नहीं है। दुर्बल व्यक्ति धर्मके द्वारा बलवान व्यक्तिको पराजित कर सकता है। अतएव धर्म ही सत्य है। इसलिए सत्य भाषणकारीको धार्मिक कहा जाता है।

ब्रह्म अग्निके रूपमें देवताओंमें ब्राह्मण हुए। इसलिए मनुष्य अग्निमें कर्म कर अग्निके माध्यमसे देवताओंसे कर्मफलकी कामना करते हैं। ब्रह्म इसी दो रूपमें व्यक्त हैं।

आत्माको न जानकर यदि कोई इस पृथिवीसे प्रस्थान करता है तो उसके सभी कर्म विफल हो जाते

हैं। ऐसा व्यक्ति इस लोकमें कोई महत्कर्म करने पर भी वह नष्ट हो जाता है। इसलिए आत्मलोककी ही उपासना करनी चाहिए। ऐसा करनेवालेका कर्मक्षीण नहीं होता।

कर्माधिकारी गृहस्थ समस्त जीवोंके भोग्य—स्वरूपहैं। गृही व्यक्ति यज्ञ करनेसे देवताओंका भोग्य होता है, स्वाध्यायसे ऋषियोंका, पिण्डदान करनेसे पितृगणोंका, एवं वासस्थान, तथा भोजनकी व्यवस्था द्वारा मनुष्योंका और तृणादि आदि पशुओंका भोग्य होता है। इसलिए श्वापद, पक्षी या अन्य जीवजन्तु-सभी गृहस्थोंके आश्रित होकर ही जीवन धारण करते हैं।

पिता प्रजापतिने विज्ञान और कर्मके द्वारा सात प्रकारके अन्नोंकी रचनाकी उसमेंसे एक साधारण अन्न है अर्थात् वह सभी प्राणियोंका भोग्य है। दो अन्न उसने देवताओंको दिया। तीन अन्न अपने लिए रखे। एक पशुओंको दिया। पशुओंको दिये हुए अन्नमें जो प्राणन क्रिया करते हैं और जो नहीं करते, वे सभी प्रतिष्ठित हैं।

जो साधारण अन्नका भोजन करते हैं, वे पापसे दूर नहीं रह पाते। क्योंकि वह मिश्र अन्न है। दो अन्न देवताओंको दिया गया है—एक हुत और दूसरा प्रहुत। इसलिए गृहस्थ पुरुष देवताओंको यज्ञ और बलि अर्पण करते हैं। कोई कोई दर्श और पौर्णमास को देवताओंका अन्न कहते हैं। पशुओंको प्रदत्त अन्न—दूध है। पशु-मनुष्यादि सभी पहले दूधसे ही पुष्ट होते हैं या जीवन धारण करते हैं।

वे अपने लिए तीन प्रकारका अन्न रखते हैं। मन, वाणी और प्राण ही वे तीन अन्न हैं। मनुष्य मन द्वारा ही देखते हैं और मन द्वारा ही सुनते हैं। काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा अश्रद्धा, धृति (धैर्य) अधृति, लज्जा, बुद्धि और भय ये सब मन ही है। पीठको स्पर्श करनेपर भी मनके द्वारा ही जाना जाता है। सभी शब्द—वाक् है एवं प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान एवं मन-ये सभी प्राण हैं। शरीर वाङ्मय, मनोमय, एवं प्राणमय है। वाक् इस लोक में है, मन अन्तरीक्षमें है और प्राण स्वर्गलोकमें है। वाक् ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद है और प्राण सामवेद है। विज्ञात वस्तु वाक् रूप है, जिज्ञास्य वस्तु मन रूप है और अविज्ञात वस्तु प्राण-रूप है। प्राण ही अविज्ञात है।

गार्ग्य—गोत्रोत्पन्न बालाकि अत्यन्त वाचाल और अहंकारी थे। वे काशीराज अजातशत्रुके निकट जाकर बोले—"मैं तुम्हें ब्रह्मका उपदेश करूँ।" अजातशत्रुने कहा—"अच्छा, मैं इस वचनके लिए आपको हजार गाय प्रदान करूँगा।"

बालाकि ने कहा—'आदित्यमें जो पुरुष हैं, उन्हें ही मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।' अजातशत्रुने कहा—'आप ऐसा न कहें। वे सबका अतिक्रम कर स्थित हैं, वे सभी प्राणियोंके मस्तक—स्वरूप हैं एवं वे ही दीप्तिमान हैं। जो इस रूपसे उपासना करते हैं, वे ही सबका अतिक्रम कर सबके मस्तक-स्वरूपमें विराजमान हैं।' बालाकि बोले—'चन्द्रमामें जो पुरुष अवस्थित हैं मैं उन्हें ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।' अजातशत्रु बोले—नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। मैं उनकी उपासना महान, शुक्ल वस्त्रधारी और

राजाके रूपमें करता हूँ । जो इस प्रकार उपासना करते हैं, वे प्रकृति-विकृतिमय दोनों प्रकारके यज्ञानुष्ठानमें समर्थ बन जाते हैं ।' बालाकि बोले—'मैं विद्युतमें अवस्थित पुरुषको ब्रह्मरूपमे उपासना करता हूँ ।' अजातशत्रु बोले—'नहीं, मैं उन्हें तेजस्वीरूप से उपासना करता हूँ । ऐसा उपासक तेजस्वी होता है, उसके सन्तान भी तेजस्वी होते हैं ।' तब बालाकि ने कहा कि वे आकाश स्थिति पुरुषकी ब्रह्मरूपसे उपासना करते हैं तब अजातशत्रुने उसका भी प्रतिवाद किया और कहा कि उनकी पूर्ण और अप्रवर्त्ति रूपसे उपासना करनेसे भी सन्तान और पशुसे पूर्ण हुआ जा सकता है एवं सन्तानादिका उच्छेद नहीं होता । उसके बाद बालाकिने वायु, अग्नि, जल, दर्पण, शब्द, सभी दिशाओं, छाया एवं आत्मामें स्थित पुरुषकी उपासनाकी बात कही; परन्तु अजातशत्रुने सभीका प्रतिवाद कर उन्हें स्तब्ध कर दिया । तब बालाकिने अजातशत्रुका शिष्यत्व स्वीकार किया अजातशत्रुने उन्हें उपदेश दिया—विज्ञानमय पुरुष शयनकालमें हृदयाकाशमें सोया रहते हैं, तब वाक्, चक्षु, नासिका, कर्ण और मन सभी उसीमें लीन रहते हैं । आत्मा स्वप्नमें अवस्थित होने पर वह कभी अपनेको ब्राह्मण, कभी राजा और कभी नाना प्रकार के उच्च-नीच अवस्थामें दर्शन करता है । गाढ निद्रामग्न होने पर कोई बाहरी ज्ञान नहीं रहता । तब वह हिता नामक ७२००० नाड़ियोंके सहारे समस्त शरीर में व्याप्त होकर बुद्धिके साथ सोया रहता है ।

जैसे मकड़ी अपने जालके ऊपरसे गमनागमन करनेपर भी उसमें आबद्ध नहीं होती, जैसे अग्निसे क्षुद्र-क्षुद्र चिनगारियाँ निकलती हैं, इसी प्रकार ब्रह्म सभी प्राणी, सभी लोक, देवता और सभी परम सत्य हैं ।

जो आधान, प्रत्याधान, स्थूणा और दाम (रज्जु) के सहित शिशुको जानते हैं, वे उनके विद्वेषी भ्रातृव्यको अवरोध करते हैं । मध्यम प्राण ही शिशु है । शरीर अवधान या अधिष्ठान है, मस्तक प्रत्याधान है, प्राण स्थूणा है (अन्न-पान जनित शक्ति है) और अन्न दाम बाँधनेकी रस्सी) है । सात अक्षितियाँ (नेत्रोंके अङ्क) उसका स्तवन करती हैं । आँखोंमें जो लालरङ्गकी रेखाएँ हैं, उनके द्वारा रुद्र इस मध्यप्राणके अनुगत है, नेत्रके जल द्वारा मेघ दर्शन शक्ति द्वारा आदित्य, नेत्रकी कालिमा द्वारा अग्नि और शुक्लता द्वारा इन्द्र अनुगत होते हैं । नीचेके पलक द्वारा पृथिवी इसके अनुगत है और ऊपरके पलक द्वारा द्युलोक अनुगत है ।

ब्रह्मका दो रूप है—मूर्त्त और अमूर्त्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और यत् (चर) सत् और त्यत् । वायु और अन्तरीक्षसे जो भिन्न है, वह मूर्त है । यह मर्त्य है, यह स्थित है और यह सत् है । वायु और अन्तरीक्ष अमूर्त्त हैं, अमृत हैं, यत् हैं और त्यत् हैं ।

प्राण और देहान्तर्गत आकाशसे भिन्न ही मूर्त्त है । यह मर्त्य है, स्थित और सत् है । नेत्र ही मूर्त्त मर्त्य और सत्यका सार है ।

प्राण और शरीरके अन्तर्गत तो आकाश है वह अमूर्त्त, अमृत यत् और त्यत् है । दक्षिण नेत्रान्तर्गत पुरुष ही इन सबका रस-स्वरूप हैं । उनका रूप कुसुम्भ रञ्जित वस्त्र, इन्द्रगोप (वीर बहुटी) कीट, अग्नि-ज्वाला, श्वेत (सफेद) कमल और विद्युतके चमक की तरह है । उनका नाम 'सत्य का सत्य' है । प्राण ही सत्य हैं, वे उसके सत्य हैं, इसलिए वे सत्य के सत्य हैं ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी

श्रीभागवत-पत्रिकाके पाठकोंको यह विदित होगा कि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने सन् १९५० ई० में ३२/२, बोसपाड़ा लेन, बाग बाजार कलकत्ता में "श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी" नामसे एक संस्कृत शिक्षाकेन्द्रकी स्थापना की थी। वर्तमान विश्व-विद्यालयोंमें छात्र पाठ्यके रूपमें संस्कृत भाषाकी शिक्षा नहीं ग्रहण करते। साथ ही विश्वविद्यालयोंकी ओरसे भी इस विषयकी कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं है। देव-भाषाका पठन-पाठन न होनेसे भारतीय संस्कृतिके प्राण स्वरूप दैव-चिन्ताधारा ही लुप्त हो जायगी—इसमें तनिक भी संदेह नहीं। संस्कृत संसारकी समस्त भाषाओंमें सभी विषयोंमें उन्नत सर्वश्रेष्ठ भाषा है। भारतीय भाषाओंमें से जो भाषा संस्कृतसे जितना ही अधिक समीप या सम्बन्धित है, वह उतनी ही उत्कृष्ट भाषा रही है। उदाहरणके लिए बंगला साहित्यका संस्कृतसे बड़ा ही निकटका सम्बन्ध होनेसे यह भाषा इतनी मधुर एवं सब प्रकारसे उन्नत है। परन्तु दुःखका विषय है कि आज संस्कृतको मृत भाषा माना जाने लगा है तथा हिन्दी और बंगला आदि भाषाओंका सम्बन्ध संस्कृतसे तोड़ा जा रहा है। यही कारण है कि ये भाषाएँ भी क्रमशः पतित और निम्नगामी होती चली जा रही हैं। संस्कृत भाषाके आनुगत्यके बिना किसी भी भाषाकी उन्नति सम्भव नहीं है।

आज बंगला साहित्यको रविन्द्रिक चोला पहनानेके लिये बंगलाके विश्वविद्यालयके अधिकारी वर्ग षड्यंत्र कर रहे हैं। इनकी जड़में संस्कृत-भाषाके प्रति अश्रद्धा एवं भारतीय वेद-उपनिषद और पुराणोंकी चिन्ताधाराके प्रति अवज्ञाका भाव ही प्रधान प्रतीत होता है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने केवल बंगाल ही नहीं, सारे भारतवर्षमें ही ऐसी दुर्गति लक्ष्य कर संस्कृत शिक्षाके प्रचार-प्रसारके लिये कलकत्ताकी 'श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीको कुछ वर्षों तक चूचूड़ामें स्थानान्तरित कर अब उसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें स्थानान्तरित कर उसकी अधिक सुचारुरूपसे परिचालनाके लिए निम्न-लिखित महोदयोंकी एक कमिटीका गठन भी कर दिया है—

(१) ॐविष्णुपाद परमहंस स्वामी परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज—सभापति।

(२) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज—सम्पादक।

(३) त्रिदण्डि स्वामी श्रीभक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज।

(४) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।

(५) श्रीयुत शचीन्द्र मोहन नन्दी (चेयरमैन, नवद्वीप नगरपालिका)

(६) पण्डित श्रीयुत जितेन्द्रनाथ पञ्चतीर्थ।

(७) पण्डित श्रीयुत निमाई चरण, व्याकरणतीर्थ

(८) पण्डित श्रीयुत सुरेशचन्द्र राय, व्याकरण-तीर्थ।

(९) श्रीयुत व्रजानन्द व्रजवासी।

विगत वर्षोंमें उक्त चतुष्पाठीसे बहुतसे विद्यार्थी बंगीय संस्कृत साहित्य परिषद्में परीक्षा देकर सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए हैं। हमने श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला) तथा श्रीभागवत-पत्रिकामें उपयुक्त अवसर पर उनके नाम प्रकाशित किये हैं। वर्तमान वर्षके १९ आषाढ़, (४ जुलाई १९६२ ई०) बुधवार-से माननीय पण्डित श्रीयुत जितेन्द्रनाथ पञ्चतीर्थ महोदयकी अध्यापकतामें उक्त चतुष्पाठी पुनः पूरे उद्यम और उत्साहके साथ परिचालित हो रही है। और यह बड़े हर्षकी बात है कि इतने अल्प समयमें ही श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीने सम्पूर्ण नवद्वीप शहरमें प्रचुर प्रतिष्ठा अर्जन की है। छात्रोंकी संख्यामें वृद्धि देख कर अब पण्डित श्रीयुत निमाई चरण ब्रह्मचारी व्याकरणतीर्थ महोदयको भी अध्यापकके रूपमें नियुक्त किया गया है। इस वर्ष उक्त दोनों अध्यापकोंकी चेष्टासे वेदान्त चतुष्पाठीसे आद्य, मध्य और उपाधिकी परीक्षार्थोंमें कुल मिलाकर बारह छात्र बैठेंगे। आजकल यहाँ काव्य, व्याकरण और वेदान्तका पठन-पाठन प्रारम्भ हो गया है। हम संस्कृतकी शिक्षा ग्रहण करनेके इच्छुक छात्रोंको सादर आह्वान कर रहे हैं। वे चतुष्पाठीके सुयोग्य अध्यापकोंकी सहायतासे देव-भाषामें अधिकार प्राप्त करें।

हम यह भी सूचित करते हैं कि इस चतुष्पाठीमें "श्रीहरिनामामृत व्याकरण" की अध्यापना विशेष रूपसे होती है। हरिनामामृत व्याकरणके छात्रोंके लिए भोजन एवं वास-स्थानकी व्यवस्था भी समिति करेगी। यह सहायता श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके नियमाधीन अध्ययन करने वालोंको ही सुलभ होगी। विद्यार्थीगण श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी भक्तिवेदान्त वामन महाराजके निकट अपनी-अपनी योग्यताके प्रमाणके साथ आवेदन-पत्र भेजें। सम्पादक महोदय द्वारा मनोनीत विद्यार्थियोंको इस चतुष्पाठीमें भर्ती की जायगी।

—निजस्व संवाद

श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने २९ अग्रहायण (१५ दिसम्बर १९६२) को ५॥ बजे श्रीधाम नवद्वीपस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे "श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय" नामसे एक होमियोपैथिक, बायोकेमिक एवं एलोपैथिक चिकित्सालयकी स्थापनाकी है। इस चिकित्सालयकी परिचालनाके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन निम्नलिखित सदस्यों की एक सब कमेटी (सहकारी-समिति) का गठन किया गया है—

(१) ॐविष्णुपाद परमहंसस्वामी परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज।

(२) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज

(३) ,, ,, ,, त्रिविक्रम महाराज

(४) ,, ,, ,, नारायण महाराज

(५) ,, ,, ,, हरिजन महाराज

(६) ,, ,, ,, विष्णु दैवत महाराज

(७) श्रीयुक्त व्रजानन्द दास व्रजवासी एल. एम. एफ. —सम्पादक (Regd. No. 8/34 cal)

(८) श्रीयुत श्रीहरि ब्रह्मचारी

(९) श्रीयुत अद्वैत दास व्रजवासी

(१०) श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयके चिकित्सक—श्रीयुत कृष्णबन्धु भौमिक, H. M. B., M. H. T C.।

उक्त दातव्य चिकित्सालय उन्मोचनके समय श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और सभापति परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामीने सभापतिका आसन अलंकृत किया। सब-कमिटीके सम्पादक डा. श्रीयुत व्रजानन्द व्रजवासी एल. एम. एफ. महोदयने सभापति महोदयके आदेशसे श्रीलप्रभुपादके लिखित "श्रीगौड़ीय अस्पताल" नामक प्रबन्धका पाठ किया। तत्पश्चात सभापति महोदयने चिकित्सालयके सम्बन्धमें एक अत्यन्त विचार पूर्ण मनोज्ञ भाषण दिया। उन्होंने कहा कि राम-कृष्ण मिशन, भारत-सेवाश्रम-संघ आदिका अस्पताल तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय एक नहीं है। बाह्य दृष्टिसे औषधि प्रदान रूप व्यापार एक सामान जान पड़ने पर भी दोनोंके उद्देश्योंमें आकाश-पातालका अन्तर है। मनुष्यको कर्म-मार्गमें प्रवृत्ति करनेके लिए जो चेष्टा, सहायता एवं सहानुभूति होती है, वह बन्धनका कारण होती है तथा जीवमात्रको भगवद्भजनमें अग्रसर करानेके लिए जो सहायता और सहानुभूति होती है, वह भगवद्राज्य में प्रवेशका अधिकार प्रदान करती है।

उक्त चिकित्सालयमें औषधि प्राप्तिका समय

(१) सबेरे ८ बजेसे ११ बजे तक।

डा० श्रीयुत कृष्णबन्धु भौमिक एच. एम. बी.

(२) शामको ३ बजेसे ५ बजे तक।

डा० श्रीयुत प्राण कृष्ण राय, एल. सी. पी. बि.

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है, इस थोड़े ही दिनोंके अन्दर सम्पूर्ण नवद्वीप शहरमें इस दातव्य चिकित्सालयकी बड़ी सुख्याति हो गई है और प्रतिदिन दूर-दूरसे बड़ी संख्यामें रोगी अपनी चिकित्साके लिए पहुँच रहे हैं।

—निजस्व सम्वाद

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौजयतः

नवद्वीपमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा और परिक्रमा

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
तेघरिपाड़ा, पो० नवदीप (नदिया)
१० दिसम्बर, १९६३

सादर संभाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग पावनावतारी स्वयं भगवान श्रीशचीनन्दन गौरहरि की निखिल-भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथि (फाल्गुनी) के उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे उपरोक्त पते पर आगामी २० फाल्गुन, ५ मार्च, मंगलवारसे २६ फाल्गुन, १२ मार्च, सोमवार तक सप्ताह-व्यापी एक विराट महा-महोत्सवका अनुष्ठान होगा । इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्तन, भाषण, इष्टगोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, महाप्रसाद-वितरण प्रभृति विविध भक्त्यंग याजित होंगे ।

इसके उपलक्षमें श्रीश्रीनवद्वीप धामके अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य कीर्तन एवं नगर संकीर्तन करते हुए सोलहकोशकी परिक्रमा होगी । इस वर्ष श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी और श्रीधाम-मायापुरमें मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् शामको श्रीनवद्वीप लौटनेकी व्यवस्थाकी गयी है ।

इस वर्ष अगले २२ फाल्गुन, ७ मार्च, बृहस्पतिवारको नव-निर्मित श्रीमन्दिरमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधा-विनोद विहारीजी एवं श्रीधामेश्वर श्रीकोलदेव (श्रीवराहदेव) प्रतिष्ठित होंगे तथा नव-निर्मित श्रीहरि-कीर्तन नाट्यमन्दिरमें विभिन्न मठोंके प्रसिद्ध त्रिदण्डि पादगणोंके विभिन्न दिन भाषण आदि भी होंगे। विस्तृत विवरणके लिये पृथक निमंत्रण-पत्र द्रष्टव्य है।

धर्म-प्राण सज्जनवृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठानमें सबान्धव योगदान कर समितिके सदस्यवर्गको परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे । इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवा-कार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे ।

शुद्धभक्त कृपालेश प्रार्थी—
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द

द्रष्टव्यः—विशेष विवरणके लिये अथवा सहायता (दानादि) देनेके लिये उपरोक्त पते पर परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निकट लिखें या भेजें ।